JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

महाकवि प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

–प्रणव पाण्डेय (शोधच्छात्र)
संस्कृत विभाग, टी. डी. (पी. जी.) कालेज,
जौनपुर, उत्तर प्रदेश, पिन कोड– 222001

विविध शास्त्रों के परिशीलन में दक्ष, विविध वेदवेदांग विद्याविशारद लब्धप्रतिष्ठ महाकवि **आचार्य ओमप्रकाश पाण्डेय** का जन्म बाराबंकी जनपद के बबुरी ग्राम में **01 जनवरी सन् 1948 ई.** में हुआ। आपकी प्रथमा तक की शिक्षा अपने पिताश्री मूर्धन्य वैयाकरण **पं. केशवराम पाण्डेय** के सानिध्य में सम्पन्न हुई। आपकी माता **श्रीमती कृष्णा कुमारी** भी संस्कृत की विदुषी थीं। आचार्य ओमप्रकाश जी ने पारम्परिक संस्कृत की शिक्षा बाराबंकी के ही सनातन धर्म संस्कृत महाविद्यालय में प्राप्त की। लखनऊ विश्वविद्यालय में आचार्य आनन्द झा और डॉ. मातृदत्त त्रिवेदी के शिष्य के रूप में **पं. ओमप्रकाश जी** ने **पी–एच.डी.** तक की उपाधियाँ अर्जित की। आपका शोधप्रबन्ध **'वैदिक खिल सूक्त : एक अध्ययन'** प्रोफेसर जे. सी. हीस्टरमैन (इस शोधप्रबन्ध के परीक्षक) के द्वारा बहु प्रशंसित है। पुणे के महान वेदज्ञ **डॉ. चिन्तामणि गणेश काशीकर** ने भी इस शोधप्रबन्ध की भूरि–भूरि प्रसंशा की है। कानपुर विश्वविद्यालय ने डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय को **सामवेदीय ब्राह्मण (एक परिशीलन)** संज्ञक शोधप्रबन्ध पर **डी.लिट्.** की उपाधि प्रदान की है। **प्रो.एस.ए.डाँगे, आचार्य बलदेव उपाध्याय तथा प्रो. को. आ. सु. अय्यर** जैसे मूर्धन्य मनीषियों ने इस शोधप्रबन्ध की बारम्बार प्रसंशा की है।

आचार्य ओमप्रकाश जी ने **सी. एस. एन. महाविद्यालय हरदोई** (कानपुर विश्वविद्यालय के अन्तर्गत) में 14 वर्षों तक स्नातकोत्तर कक्षाओं का अध्यापन एवं शोधच्छात्रों का निर्देशन तथा अनुसन्धान का कार्य किया। लखनऊ विश्वविद्यालय में रीडर, प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष के रूप में आपने **30 जून 2010 ई.** तक अपनी महनीय सेवा प्रदान की। इसी बीच तीन वर्षों के लिये आप पेरिस (फ्रान्स) के सोरबोन नूवेल यूनिवर्सिटी में **विजिटिंग प्रोफेसर** भी रहे। भारत सरकार ने आपको उज्जैन के **महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान** का **सचिव** नियुक्त किया; जहाँ आपने **2001 से 2005** तक वेदशिक्षा–परीक्षा के सन्दर्भ में देशभर में बहुत–सी वेद–पाठशालाओं की स्थापना की।

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के लखनऊ परिसर में प्रो. पाण्डेय जी ने दो वर्षों तक **'शास्त्रचूड़ामणि विद्वान्'** के रूप में शोधच्छात्रों का मार्गनिर्देशन किया। **'वर्ल्ड संस्कृत कान्फ्रेंस'** के वाराणसी, बंगलुरू और ट्यूरिन (इटली) के सम्मेलनों में आपने अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। फ्रान्स, जर्मनी, नीदरलैण्ड, मॉरीशस आदि अनेक देशों में आपने प्राच्यविद्या के बहुसंख्यक विषयों पर अपना व्याख्यान प्रस्तुत किया।

प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय प्रणीत शोध एवं समीक्षा ग्रन्थों में **वैदिक खिल सूक्त मीमांसा, वैदिकसाहित्य और संस्कृति का स्वरूप, वैदिकसंस्कृति के मूल तत्त्व, अमृतमन्थन, गोपथ ब्राह्मण, संस्कृति–समाज–धर्म और दर्शन, विश्ववारा संस्कृति, वेदमयो परिचयः, संस्कृत मनीषा के कतिपय नक्षत्र, सामवेदीय साहित्य, कला धर्म और दर्शन, पं. अम्बिकादत्त व्यास : मोनोग्राफ** आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं। आप द्वारा अनूदित और सम्पादित ग्रन्थों में **वरदराजस्तव** (हिन्दी व्याख्या), **पारस्कर– गृह्यसूत्र** (हिन्दी व्याख्या), **सांख्यतत्त्वकौमुदी** (हिन्दी व्याख्या), **सदुक्तिकर्णामृतम्** (हिन्दी व्याख्या), **संसकृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास** (वेदांग खण्ड) आदि मुख्य हैं।

प्रो. पाण्डेय रचित मौलिक कृतियों में **स्वतन्त्र्यगाथा, जीवनपर्वनाटक, अभागिनी** (नाटिका), **निर्याति नैव स्मृतिः** (खण्डकाव्य), **विपल्लवोऽयं जीवनवृक्षः,** (खण्डकाव्य) तथा **रसप्रिया विभावनम्** (महाकाव्य) एवम् अनेक हिन्दी ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। **रोमांस विद् संस्कृत** नामक ग्रन्थ की रचना आपने अंग्रेजी माध्यम के छात्रो को सरल संस्कृत सिखाने के अभिप्राय से की है। इसके अतिरिक्त लगभग **300 शोधपत्र, निबन्ध** एवं **लेख** देश–विदेश के विभिन्न प्रतिष्ठित शोधपत्रों, पत्रिकाओं, तथा मासिक, साप्ताहिक, एवं दैनिक पत्रों में समय–समय पर संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी और फ्राँसीसी भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं; जिनके लिये प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय जी को समय– समय पर विभिन्न संस्थाओं के द्वारा पुरस्कृत भी किया जा चुका है।

प्रो. पाण्डेय द्वारा प्राप्त कुछ प्रमुख **पुरस्कारों** का विवरण इस प्रकार है–

- सन् 2003 में भारतीय विद्या भवन बंगलूरू के द्वारा वेदरत्न पुरस्कार।
- सन् 2008 ई. में राष्ट्रीय साहित्य अकादमी का पुरस्कार।
- सन् 2005 ई. में 'सरस्वती' और 'वेद–वेदांग पुरस्कार।
- उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा विभिन्न पुरस्कार।

प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय की काव्यप्रतिभा के समाकलन हेतु उनके द्वारा प्रणीत कुछ प्रमुख ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. रसप्रिया–विभावनम् (परिस राजधानी)

प्रस्तुत महाकात्य में कवि ने अपनी कवित्व–प्रतिभा के द्वारा फ्राँस की राजधानी पेरिस को **नायिका** मानकर वहाँ पर **कामदेव** के पुनर्जन्म की कल्पना की है। इस महाकाव्य में पेरिस का जनजीवन, वहाँ के लोगों का सामाजिक व्यवहार, वहाँ की प्रकृतिक सुन्दरता, ऐतिहासिक घटनाक्रमों तथा भौगोलिक परिवेश का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। कलापक्ष एवं भावपक्ष की दृष्टि से सहृदयों के चित्त को चमत्कृत करने वाले रस, छन्द, अलंकार आदि का समुचित सन्निवेश किया गया है।

ज्ञातव्य है कि **संस्कृति** मानव सभ्यता के ऐतिहासिक घटनाक्रमों के परिवर्तित, विकसित एवं नवोदित उपलब्धियों की वाहक होती है। **संस्कृति** मानव समाज की आधारभूत आचार, व्यवहार एवं परम्परा के रीति–रिवाजों की झलक प्रस्तुत करती है। **फ्राँस की संस्कृति** आधुनिक है, विलासिता से ओत–प्रोत है; जिसमें व्यक्ति अपने जीवन को आनन्दित करने के लिये अनुराग एवं प्रेम को ही जीवन का उद्देश्य मानता है। पेरिस के इस सांस्कृतिक सौमनस्य की दृष्टि से इस महाकाव्य से एक पद्य यहाँ पर प्रस्तुत है–

अनुरागमयी विभावरी, ह्यनुरागैरपि पूरितन्दिनम्।
अनुरागमयं प्रतिक्षणं, प्रतिरथ्यं हि मया विलोकितम्।।[1]

धार्मिक मान्यताओं एवं भावनाओं की दृष्टि से प्रो. पाण्डेय जी ने फ्राँस की राजधानी **पेरिस** का अत्यन्त सूक्ष्मता पूर्वक अध्ययन करते हुये, प्रस्तुत महाकाव्य में धार्मिक एकता का बहुत मनोहारी वर्णन किया है। फ्राँस का प्रत्येक नागरिक अपने धार्मिक विश्वास को हृदय की गहराइयों से प्रकट करता हुआ, अपने प्रभु ईशामसीह की आराधना हेतु सदैव तत्पर रहता है। जैसा कि प्रस्तुत पद्य में सुस्पष्ट रूप में देखा जा सकता है–

करुणावरुणालयस्त्वयं, प्रभुरीशो जनमूर्ध्नि तिष्ठति।
निखिलेऽपि महीतले परमं, भृशमेवात्र स लोकपूरितः।।[2]

प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से **प्रो. पाण्डेय** जी का मन्तव्य है कि पेरिस की प्राकृतिक सुन्दरता ऋतुओं के परिवर्तित होने पर भी कभी श्रीहीन अथवा वियोगग्रस्त नहीं दिखाई देती है; जैसा कि निम्नलिखित पद्य में देखा जा सकता है–

लताः प्रसूनैर्विटपाः सुपर्णैः, विहंगमैश्चापि वनस्थलोऽयम्।
सुसंगताभाति समन्ततोऽत्र, वियुक्तता नापि जडेऽस्ति काचित्।।[3]

'कलात्मक' धरातल पर ज्ञातव्य विषय है कि किसी भी देश अथवा समाज की **'कला'** देश, काल, संस्कृति, सभ्यता, लोकव्यवहार और सामाजिक व्यवस्था के अतीत को अपने स्वरूप में आत्मसाात कर लेती है तथा भविष्य की विस्तृत पृष्ठभूमि पर बिना कुछ कहे, सब कुछ उपस्थापित कर देती है। इस दृष्टि से **फ्राँस** की पारम्परिक प्रौढ़कला अत्यन्त अद्भुत एवम् अनुग्रहणीय है। इस कला के सम्यक् निदर्शन से ऐसा प्रतीत होता है कि फ्राँस के कलाकारों ने अत्यन्त कलात्मक रीति से **'कला'** से प्रेम किया है। अतः प्रो. पाण्डेय जी का मन्तव्य है कि फ्रांस के कलाकारों ने अपना जीवन **'कला'** के साथ जिया है, जैसा कि प्रस्तुत पद्य में द्रष्टव्य है–

कलया सः प्रीतिरीतयः, कलयैशां सह जीवनक्रमः।
विकलामपि कारुतूलिका, सकलामेव करोति संसृतिम्।।[4]

महाकवि पाण्डेय जी फ्राँस की सुख समृद्धि में वहाँ के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की कारणता को स्वीकार करते हुये कहते हैं कि फ्रांस में समुन्नत तकनीकों के प्रयोग का ही परिणाम है कि फ्राँस का नित्यप्रति उत्तरोत्तर विकास हो रहा है; जिससे फ्राँस में चिकित्सा, विज्ञान, खगोलविद्या, अस्त्र–शस्त्र तथा परिवहन इत्यादि कुशल तकनीकी विद्याओं का तीव्रगति से विकास हो रहा है। उक्त सुख–सौविध्य का सूचक एक पद्य यहाँ पर प्रस्तुत है–

रमणीय–वने महापथे, बसयानेष्वपि चुम्बने रतान्।
अवलोक्य नु माति म मनः, प्रणयार्ता वसुधापि कीदृशी।।[5]

भावपक्ष की भव्यता की दृष्टि से रसवादी सिद्धान्त के पोषक महाकवि प्रो. पाण्डेय जी ने **रसप्रिया–विभावनम्** नामक अपने इस लब्धप्रतिष्ठ महाकाव्य में **शृंगाररस** को अंगीरस के रूप में प्रतिस्थापित किया है तथा अद्भुत एवं वीररस को अंग के रूप में स्वीकार किया है। यहाँ पर **शृंगाररस** के संयोगपक्ष के निदर्शनार्थ **रसप्रिया–विभावनम्** का एक मनोहारी पद्य यहाँ पर प्रस्तुत है; जिसमें महाकवि ने **रसप्रिया** 'पेरिस' को अत्यन्त सम्मोहक स्वरूप में उपस्थापित किया है–

युवतो निधाय हस्तकं, प्रिय–वक्षोरुह–राशि–मध्ये।
नयनं नयने निवेशिनी, किल कण्डूयति तं रसातुरा।।[6]

कलापक्ष की कमनीयता के विषय में अलंकारशास्त्रियों का मन्तव्य है कि जिस प्रकार हार, कंकण आदि के द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों–प्रत्यंगों की तथा शौर्य, दया, दाक्षिण्य आदि के द्वारा आत्मा की शोभा को उद्भासित किया जाता है, उसी प्रकार विभिन्न अलंकारों के प्रयोग से काव्य की शोभा को चारुतर बनाया जाता है; जो प्रत्येक महाकवि का लक्ष्य होता है। अतः इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु **महाकवि प्रो. पाण्डेय** ने अपने महाकाव्य **रसप्रिया–विभावनम्** में विभिन्न अलंकारों का अत्यन्त सुन्दर एवं समुचित प्रयोग किया है। अर्थात् प्रस्तुत महाकाव्य की सुन्दरता के साथ–साथ **रसप्रिया 'पेरिस'** के सर्वातिशायी स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिये महाकवि प्रो. पाण्डेय ने अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, रूपक, यमक इत्यादि विभिन्न अलंकारों का अत्यन्त रमणीय प्रयोग किया है। यहाँ पर प्रो. पाण्डेय द्वारा प्रयुक्त **उपमा अलंकार** का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

नलनीव मनोरमा तनूस्तव, मृद्वो लतिका भुवस्तले।
यामेति कृतार्थतां परां, कमलोत्फुल्ल–मुखप्रदर्शनात्।।[7]

छन्दशास्त्र की दृष्टि से **रसप्रिया–विभावनम्** नामक प्रस्तुत महाकाव्य में महाकवि प्रो. पाण्डेय ने अनुष्टुप्, उपेन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, उपजाति, मदाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, द्रुतविलम्बित, आख्यानकी एवं वियोगिनी नामक विविध छन्दों का प्रयोग किया है।

2. निर्याति नैव स्मृतिः

निर्याति नैव स्मृतिः महाकवि प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय प्रणीत एक मनोहारी संस्कृत खण्ड– काव्य है। यह खण्डकाव्य कुल **111 श्लोकों** में निबद्ध है। इस कालजयी रचना में महाकवि ने स्वसुखमात्र अभिलाषा हेतु परित्यक्त स्वजन के प्रति युवक के पश्चात्ताप का अत्यन्त मर्मभेदी वर्णन प्रस्तुत किया है।'

प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय जी ने अपने काव्यपुरुष के चरित्र के माध्यम से ग्राम्यजीवन एवं ग्राम्य–जन्मभूमि का अत्यन्त हृदयहारी वर्णन किया है; क्योंकि इस जगत् में सब कुछ प्रयत्नसाध्य है, किन्तु माता–पिता तथा जन्मभूमि की प्राप्ति दुर्लभ है–

जननी जन्मभूमिश्च, जाह्नवी च जनार्दनः।
जनकः पंचमश्चैव, जकाराः पंचदुर्लभाः।।

अतः महाकवि ने गाँव की मिट्टी के प्रति सहज अनुराग, ग्रामीण मित्रों के साथ की गयी क्रीड़ाओं, वर्षा ऋतु में गाँव की कीचड़ युक्त गलियों इत्यादि स्मृतियों से भावभरित अपने काव्यपुरुष को अत्यन्त मौलिक रूप में प्रस्तुत करके सहृदयों के हृदय को अपनी काव्यप्रतिभा से आन्दोलित करने का सर्वथा सफल प्रयास किया है; जिसका एक उदाहरण यहाँ पर प्रस्तुत है–

ग्रामस्यावसतिर्मृदा – विरचिता, वर्षर्तु–कालश्च सः,
वीथ्यः पंकजलाविलाश्च सततं स्कन्दज्जलन्तद् गृहम्।
वारं वारमहो ! निशीथसमये, क्लिन्नाश्च कन्थाश्च मां,
रक्षन्तीमधुना स्मरामि जननीं कक्षाच्च कक्षगताम्।।[8]

ग्राम्य परिवेश में फलती–फूलती हुई भारतीय संस्कृति की समग्रता को प्रस्तुत करते हुये, महाकवि प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय ने भारतीय लोकसंस्कृति का जो सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। यहाँ पर भारतीय स्त्रियों के **करवाचौथ** (कर्कचतुर्थी) व्रतपालन के सन्दर्भ में प्रस्तुत एक पद्य यहाँ पर '**निर्याति नैव स्मृतिः**' खण्डकाव्य से उद्धृत है, जो लोकसंस्कृति का चरम निदर्शन है–

आयुष्याय धवस्य मंगलमयोत्थानाय चाहर्निशं,
संगलग्नामधुना स्मरामि जननीं साध्वीं व्रतस्थां च ताम्।
तस्याः कर्कचतुर्थिका–व्रत–विधावट्टालिकास्थे च मयि,
वृक्षाभ्यन्तरतः शनैः सपुलकश्चन्द्रोदयः स्मर्यते।।[9]

गाँवों की अपेक्षा नगरों में अधिक सुविधाएँ सुलभ हैं। अतः लोग नगरों में निवास करना पसन्द करते हैं। नगरों में जीविकोपार्जन के बहुत से उपाय हैं। अतः नगरीय जीवन सभी को प्रिय लगता है, किन्तु यह कटु सत्य है कि यह नगरीय जीवन विविध प्रकार के त्रासों से अत्यन्त सन्त्रस्त है। नगरों के वतानुकूलित भवनों के द्वारा लोग निगल लिये जा रहे हैं, जैसा कि महाकवि प्रो. पाण्डेय जी के प्रस्तुत पद्य में देखा जा सकता है–

ऐतैरसंख्य विवरैश्च समुन्नतैस्त,
भव्यैर्हि लौहघटितैश्च तलातलैर्नु।
पाषाणखण्डरचितैरपि वज्रलिप्तै–
र्वातानुकूलभवनैश्च नरो निगीर्णः।।[10]

'निर्याति नैव स्मृतिः' संज्ञक प्रस्तुत खण्डकाव्य में स्मृति का जितना सुन्दर वर्णन किया गया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। इस खण्डकाव्य का नायक अपनी नायिका विषयक स्मृति को लक्ष्य करके कहता है, भद्रे! आज भी मेरे मन में (पूर्वकालिक) तुम्हारी स्मृतियाँ (यादें) वैसे ही बनी हुई हैं। रूप, युवावस्था एवं शरीर की कान्त्यादिक सभी नष्ट हो जाती हैं, किन्तु स्मृतियाँ कभी भी नष्ट नहीं होती हैं। वर्षाकाल चला जाता है, सरोवर का अगाध जल सूख जाता है, एक–एक करके सभी पक्षी सरोवर छोड़कर चले जाते हैं; किन्तु थका–हारा पथिक उस सरोवर के पास से गुजरते हुये, हृदयहारी पुण्डरीक की जिस सुगन्ध का स्वाद ले लेता है, वह उसे कभी भी विस्मृत नहीं कर पाता है। जैसा कि महाकवि प्रो. पाण्डेय जी अपने निम्नलिखत पद्य में लिखते हैं–

प्रावृड् याति, क्षयत्यगाध–सलिलं शुष्यत्यजस्रं सरः,
एकैकाश्च विहंगमास्तु वियति भ्राम्यन्ति मुक्त्वा तटम्।
आघ्राताऽध्वनि पुण्डरीक–सुरभिः श्रान्ताऽध्वनीनेन या,
सर्वं याति, न याति किन्तु सुरभेः स्निग्धा च सा संस्मृतिः।।[11]

कविवर पाण्डेय जी कहते हैं कि आज वे विविध शास्त्रों की समीक्षा कर चुके हैं, विविध विद्याओं का अध्ययन करके गुरु के निर्मल कृपाप्रसाद से प्रतिष्ठा को भी प्राप्त कर चुके हैं; किन्तु बाल्यकाल में गुरुश्रेष्ठ के द्वारा जो एक थप्पड़ मारा गया था, उसकी याद आज भी मानसपटल पर वैसे ही विद्यमान है–

शास्त्राण्यत्र समीक्षितानि विविधा विद्याः समालोचिता,
भूयोऽप्यत्र मया गुरोश्च कृपया लब्धं यशो निर्मलम्।
बाल्ये किन्तु चपेटिका गुरुवरादासादिता या मया,
अद्याप्येव च माद्यतीह नितरां तस्याः स्मृतिः पावनी।।[12]

नगरीय जनजीवन लोगों के मन–मस्तिष्क पर कितना प्रभावी होता जा रहा है। इस बात से प्रायः सभी लोग सुपरिचित हैं। नैतिक दृष्टि से देखा जाय तो इस जगत् में माता–पिता तथा मातृभूमि का सर्वोच्च स्थान है। अपने ग्रामीण नवयुवकों एवं नवयुवतियों से प्रायः सभी ग्रामवासी यह अपेक्षा रखते हैं कि जब ये पढ़–लिखकर अपने गाँव में वापस आयेगें, तो गाँव का उत्थान होगा, सम्पूर्ण गाँव को एक नयी दिशा मिलेगी; किन्तु इस राष्ट्र में यह आशा केवल प्रतीक्षा ही सिद्ध होती है, जैसा कि महाकवि प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय जी के प्रस्तुत पद्य में देखा जा सकता है–

ग्रामं परावृत्य युवास्मदीयो, हितंकरिष्णुः समधीतविद्यः।
प्रतीक्षमाणाश्च शुभैषिणस्ते, शुभेच्छया चापि शुभाशया वा।।[13]

भावपक्ष की दृष्टि से **'निर्याति नैव स्मृतिः'** संज्ञक इस खण्डकाव्य का अंगीरस **विप्रलम्भ शृंगार** है। इस रस की हृदयहारी छटा के निदर्शनार्थ एक पद्य यहाँ पर प्रस्तुत है; जिसमें प्रो. पाण्डेय द्वारा प्रस्तुत काव्यगत शृंगारिक कमनीयता द्रष्टव्य है–

भद्रे! श्रुतं तदखिलं हि मया त्वयोक्तम्,
चिन्तात ,रस्तदनुबोद्धुमहं समर्थः।

त्वामत्र खिन्न–हृदयामधुनोपलभ्य,
किंस्विन्मुमूर्च्छिषति चित्तमिदं न जाने।।[14]

इस प्रकार प्रस्तुत खण्डकाव्य **'निर्याति नैव स्मृतिः'** में महाकवि प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय ने विलुप्तप्राय ग्रामीण जनजीवन एवम् उस ग्राम्यजीवन की अमृतोपम सुखद स्मृति तथा नित्यप्रति नये–नये सन्त्रासों से संयुक्त नगरीय जीवन का अत्यन्त रमणीय वर्णन किया गया है। यह काव्यरत्न निश्चित ही आधुनिक संस्कृतसाहित्य की विशिष्ट उपलब्धि है।

3. जीवनपर्वनाटकम्

सात अंकों में निबद्ध महाकवि प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय प्रणीत **जीवनपर्वनाटक** की उपजीव्यता का श्रेय ऐतरेयब्राह्मण के **हरिश्चन्द्रोपाख्यान** को प्राप्त है। इस हृदयाह्लादक नाटक के इतिवृत्त में एक पिता अपने पुत्र की हत्या के लिए उद्यत दिखाई देता है। यज्ञों में हिंसा का बोल–बाला है। राजकर्मचारी विविध षड्यन्त्रों में लिप्त हैं। तान्त्रिक प्रयोगों की बहुलता सुस्पष्ट रूप से दिखाई देती है; किन्तु साथ ही साथ एक मित्र अपने मित्र की जान बचाने के लिए यज्ञशाला में स्वयमेव अपने प्राणों को समर्पित कर देने में तत्पर दिखाई देता है। जनता की कठिनाइयों को दूर करने के लिये एक राजा अपने पुत्र को भी बलिवेदी पर न्यौछावर करने में संकोच नहीं करता है। मृत्यु को अपने सम्मुख उपस्थित देखकर, बलिभूत युवक को भगवान के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं दिखाई देता है। अतः वह अपने ईष्टदेव वरुण की स्तुति में लीन हो जाता है। अन्ततः उसकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान वरुणदेव प्रसन्न हो जाते हैं और उस युवक को जीवनदान देते हैं।

इस नाटक की सम्यक् समीक्षा से हमें पता चलता है कि प्रस्तुत नाटक में नाटककार प्रो. पाण्डेय जी ने समाज में व्याप्त कुरीतियों को उजागर करने एवम् उन्हें उन्मूलित करने का जो प्रयास किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। क्रियाशीलता के प्रतिपादनक्रम में जब राजपुरोहित, रोहित और सुनन्दा, तीनों दुर्गम वन में यात्रा कर रहे हैं, उस समय उनके 'पाँव' काँटों से बिंधे हुए हैं। भूख, प्यास तथा यात्राजन्य श्रम से क्लान्त **'रोहित'** राजपुरोहित से कहते हैं, तात! अब पैर आगे नहीं बढ़ रहे हैं। हम कुछ समय तक यहीं विश्राम करना चाहते हैं। ऐसा सुनकर राजपुरोहित जी 'रोहित' से कहते हैं, **युवराज! रोहित!!** विश्राम का नाम भी मत लो। **चरैवेति, चरैवैति...।** ऐसा सुनकर **'सुनन्दा'** भी विश्राम हेतु राजपुरोहित से आग्रह करती है। सुनन्दा के इस आग्रह पर उसे समझाते हुये, राजपुरोहित जी कहते हैं–

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः;
अतिष्ठँस्त्रेता भवति, कृतं संपद्यते चरन्।
चरन् वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम्;
पश्य सूर्यस्य श्रेयाणं यो न तन्द्रयते चरन्।।[15]

कोशलनरेश महाराज हरिशचन्द्र के राज्य में श्मशानभूमि पर स्थित रुद्रायतन, जहाँ कालभैरव की विशाल प्रतिमा स्थापित है। रुद्रायतन का परिवेश मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, तथा मैथुन की चरम अवस्था को प्राप्त कर चुका है। तन्त्राचार्य इत्यादि मिलकर षड्यन्त्र पूर्वक राजकुमार **रोहित** की बलि चढ़ाना चाहते हैं; किन्तु **रोहित** के स्थान पर **शुनःशेप** अपने आपको बलिवेदी पर समर्पित करने को तैयार हो जाता है। बलिदान के लिए समस्त आनुसंगिक प्रबन्धों को पूर्ण किया जा चुका हैं। मण्डलाकार तान्त्रिकों का समूह बैठा हुआ है। बलिभूत **शुनःशेप** की बलि चढ़ाने के लिये **'शमिता'** के रूप में **शुनःशेप** का पिता **तन्त्राचार्य अजीगर्त** स्वयम् उपस्थित है। नाटक के अन्त में **वरुणदेव** प्रसन्न होते हैं तथा **शुनःशेप** को जीवनदान देते हुये, जनहित में आशीर्वाद प्रदान करते है, कि **''ब्रहर्षि! नरबलि की कुत्सित प्रथा को दूर करने के लिए बनाई गई, आपकी योजना साकार हो''।**[16] इस भरतवाक्य के साथ प्रस्तुत नाटक का सुखद अवसान होता है।

इस प्रकार हम देखते है कि प्रस्तुत नाटक में एक ओर तान्त्रिक प्रभावों का बोल–बाला दिखाई देता है और दूसरी ओर नाटककार के द्वारा मानवता पर प्रक्षेपित प्रकाशपुंज दिखाई देता है। राजपुरोहित की कन्या को वश में करने के लिये एक ओर तन्त्राचार्य के द्वारा वशीकरण आदि के प्रयोग की कुचेष्टा की जा रही है और दूसरी ओर राजपुरोहित की कन्या **सुनन्दा** मानवता को ध्यान में रखते हुये, अहंकारी मन्त्री के पुत्र को छोड़कर एक निर्धन कवि **शुनःशेप** से विवाह करती है।[17]

नाटककार ने तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक बुराईयों को यथावसर समुचित रूप में प्रदर्शित किया है। उदाहरणतया अहंकारोन्मत्त मन्त्री का पुत्र कहता है कि मैं मन्त्री का पुत्र हूँ। अतः मैं जो चाहूँ वह सब कर सकता हूँ, चाहे व करणीय हों या अकरणीय–

अहं मन्त्रिपुत्रः समर्थः सुशक्तः।
करिष्यत्ययं किंजनो मयि विरक्तः।।

भयं नास्ति मे किंचिदपि राजरोषात्।
लभेऽहं यथेष्टं धनं राजकोशात्।।
ममेच्छैव शास्त्रं विधिर्वामयोक्तः।
अहं मन्त्रिपुत्रः समर्थः सुशक्तः।।[18]

मृत्यु से पूर्व अन्तिम इच्छा व्यक्त करने के लिये, आदेशित **'शुनःशेप'** बलि से पूर्व सस्वर काव्यपाठ करने की इच्छा अभिव्यक्त करता है, जिसके लिए उसका कपड़े से ढँका हुआ मुख खोल दिया जाता है और **शुनःशेप** सस्वर काव्यपाठ में संलग्न हो जाता है–

सत्यं चैव हृदिस्थितिं यदचलं तत्पातु मां संकटे।
देवाऽयं वरुणः प्रसीदतुतरां मुच्यात्तथा बन्धनात्।।[19]

'शुनःशेप' के काव्यपाठ (मन्त्रपाठ) से प्रसन्न वरुणदेव शुनःशेप के समक्ष स्वयम् उपस्थित होते हैं और कहते हैं, **''तुम्हारी काव्यप्रतिभा (मन्त्रशक्ति) से, तुम्हारे आत्मविवास से, तुम्हारे मित्र–वत्सलता से और तुम्हारी लोकहितैषिणी प्रवृति से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। अतः यज्ञपाश के समस्त बन्धनों से मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ। साथ ही साथ मैं तुम्हें यह वरदान देता हूँ कि आज से वैदिक यज्ञों का नाम 'अध्वर' (हिंसारहित यज्ञ) होगा। अब किसी भी यजमान को पशुबलि के लिए प्रेरित नहीं किया जायेगा।''**

इस प्रकार सुस्पष्ट है कि प्रस्तुत नाटक में नाटककार प्रो. पाण्डेय जी का **मूल प्रयोजन** धर्मानुष्ठान के द्वारा समस्त प्राणियों का कल्याण करना है। वैदिकयज्ञ (अध्वर) इसी प्रयोजन को अभिव्यक्त करते हैं। मूक एवं निर्दोष जीवों की हत्या निन्दनीय है। **करुणा, दया, अहिंसा** और **सदाचार,** ये चारों धर्म के **चार स्तम्भ** हैं। यहाँ **हिंसा** (नरबलि) के प्रसंग को नाटककार प्रो. पाण्डेय जी ने पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया है; जिसका सिद्धान्तपक्ष हिंसारहित **'अध्वर'** (नरबलि/पशुबलि का उन्मूलन) है।

4. विपल्लवोऽयं जीवनवृक्षः

महाकवि प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय प्रणीत **'विपल्लवोऽयं जीवनवृक्षः'** आधुनिक संस्कृतकाव्यों में परिगणित, 130 पद्यों में निबद्ध एक लब्धप्रतिष्ठ **'खण्डकाव्य'** है। इस खण्डकाव्य में महाकवि प्रो. पाण्डेय जी ने स्वसुखाभिलाषी पुत्र की स्वार्थमयी कथा तथा पिता के एकाकी जीवन की कारुण्यकथा का वर्णन किया है।

प्रस्तुत काव्य में महाकवि का मन्तव्य है कि मानवजीवन **'वृक्ष'** की भाँति होता है। पहले पत्ते, तत्पश्चात् पुष्प, उसके बाद क्रमशः फल आते हैं। इसी प्रकार मनुष्य के **गृहस्थजीवन** में भी पुत्रों–पुत्रियों तथा पौत्रों–पौत्रियों से आनन्द की सरिता प्रवाहित होती है; किन्तु कभी–कभी ऐसा भी होता है कि किसी पिता को एक ही **पुत्र** होता है, वह भी विदेश चला जाता है तथा वहीं पर विवाह करके अपने गृहस्थजीवन को व्यतीत करने लगता है। ऐसी स्थिति में उसके पिता की स्थिति **'विपल्लवोऽयं जीवनवृक्षः'** (पल्लव–रहित जीवित वृक्ष) की भाँति हो जाती है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय राजनेताओं के द्वारा भारतवर्ष की किस प्रकार से दुर्दशा की गयी है, यह तथ्य इस खण्डकाव्य में सुस्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। युवकों में किस तरह की विदेशगमन की अभिलाषा दिखाई देती है तथा विदेशगमन के बाद उनके माता–पिता किस प्रकार उपेक्षित कर दिये जाते हैं ? 'विपल्लवोऽयं जीवनवृक्षः' की यह दशा आज न केवल महाकवि के मन को आन्दोलित कर रही है; अपितु यह मनोदशा आज प्रायः सभी भारतीयों के हृदय को झकझोरती हुई दिखाई देती है।

इन्हीं झंझावातों से संतप्त महाकवि का मन्तव्य है कि इस जगत् में प्रायः सभी पदार्थ विविध प्रयासों से प्राप्त किये जा सकते हैं, किन्तु माता–पिता और जन्मभूमि का प्रयासजन्य संसर्ग दुर्लभ है; जैसा कि कहा भी गया है–जननी जन्मभूमिश्च जाह्नवी च जनार्दनः। जनकः पंचमश्चैव जकाराः पंचदुर्लभाः।

माता के समान जन्मभूमि भी अत्यन्त प्रिय तथा स्वर्ग से भी बढ़कर है–**'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'** इस उक्ति के पोषक महाकवि प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय जी ने प्रस्तुत खण्डकाव्य में एक पिता के माध्यम से अपने जन्मभूमि विषयक प्रेम को प्रदर्शित किया है। अपनी जन्मभूमि, अपना देश, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और उसके प्रति विविध–भाव–भरित हृदयाह्लादक तत्त्व महाकवि के मन में देवतुल्य हैं। जहाँ पतितपावनी गंगा नहीं है; जहाँ मन्दिरों में भगवान विश्वनाथ का मन्त्रोद्घोष नहीं होता है, जहाँ चित्त को पवित्र करने वाली भगवती अन्नपूर्णा की स्तुति नहीं होती है; भला वह देश निवास के योग्य कैसे हो सकता है ? जैसा कि प्रो. पाण्डेय जी अपने प्रस्तुत पद्य में लिखते हैं–

न यत्र गंगा न तरलोतरंगा, न विश्वनार्थचन मन्त्रघोशः।
न चान्नपूर्णास्तुतिरेव चित्तं पुनाति वासः कथमस्तु तत्र।।[20]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि के मन में **भारतीय संस्कृति** के प्रति अनन्य प्रेम कूट–कूटकर भरा हुआ है। महाकवि का मन्तव्य है कि जहाँ घर के ऑगन में प्रतिदिन सन्ध्याकाल में तुलसी के वृक्ष के नीचे दीप–प्रज्ज्वलन नहीं होता है, भला वह देश निवास के योग्य कैसे हो सकता है ? जैसा कि महाकवि प्रो. पाण्डेय जी अपने प्रस्तुत पद्य में लिखते हैं–

गृहांगणस्थस्तुलसी–तरुश्च, न शोभते प्रज्वलित–प्रदीपैः।
प्रदोषवलासु कथं स देशः प्रवासहेतोरपि शक्ष्यतीति।।[21]

अपनी सन्तान के सुख हेतु लोग दिन–रात परिश्रम करते है। अपने जीवन के दुःख का प्रतिबिम्ब भी अपनी सन्तान के ऊपर नहीं पड़ने देते हैं। यदि सन्तति माता–पिता के पास हो, तो उनके दीनतापूर्ण जीवन में भी दिन सुवर्णवत् तथा रात्रि रजतवत् प्रतीत होती है। मानवजीवन में सन्तान के प्रति माता–पिता का प्रेमप्रवणित मन जिस वात्सल्यरस से संसिक्त होता है, उसका सुस्पष्ट प्रभाव महाकवि प्रो. पाण्डेय के निम्नलिखित पद्य में देखा जा सकता है–

स्वतः सुसम्भूय गृहे वसन्तः, समानुरागं च विभावयन्तः।
वयं सुखं यच्च लभामहे स्म, तदस्ति किं देवपुरेऽपि किंचित्।।[22]

भावपक्ष की दृष्टि से किसी भी रसहीन अर्थ का कोई महत्व नहीं होता है– **न हि रसादृतेकश्चिदर्थः प्रवर्तते।**[23] आचार्य विश्वनाथ कविराज ने भी इसी मार्ग का अनुसरण करते हुये **'रस'** को काव्य की **'आत्मा'** के रूप में स्वीकार किया है– **वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।**[24] इस रस की दृष्टि से प्रो. पाण्डेय ने प्रस्तुत खण्डकाव्य में **'करुणरस'** को **अंगीरस** के रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ पर भारत राष्ट्र की दैन्यस्थिति के प्रदर्शन में करुणरस से ओत–प्रोत, प्रो. पाण्डेय प्रणीत निम्नलिखित पद्य द्रष्टव्य हैं–

अवितथं वचनं भवतः परं मम मनोऽपि निशम्य विदूयते।
अहह! तातपदैरिह कीदृशं कठिन–दुःखमबोधि मुहुर्मुहुः।।[25]

अरक्षिता तिष्ठति राजरथ्या, सुरक्षितास्सन्ति न रक्षिणोऽपि।
भयान्वितोदर्शि जनप्रवाहः, सुनिर्भयं गर्जति दस्युवर्गः।।[26]

छन्दशास्त्र की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य में अनुष्टुप्, उपजाति, स्रग्विणी, बसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित आदि छन्दों में देशप्रेम, वात्सल्यभाव, भारत की दैन्यदशा तथा विविध त्रासों से सन्त्रस्त सामाजिक जीवन का बहुत सुन्दर निरूपण किया गया है।

इस प्रकार महाकवि प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय के काव्यों की निष्पक्ष समीक्षा से पता चलता है कि आधुनिक संस्कृत साहित्य की समृद्धि में प्रो. पाण्डेय के ग्रन्थों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपनी इस सारस्वतसेवा के लिये प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय को संस्कृत जगत् में सदैव याद किया जायेगा।

सन्दर्भ (REFERENCES)

01. रसप्रिया–विभावनम्।। 02/08।।
02. रसप्रिया–विभावनम्।। 04/10।।
03. रसप्रिया–विभावनम्।। 03/32।।
04. रसप्रिया–विभावनम्।। 06/41।।
05. रसप्रिया–विभावनम्।। 02/28।।
06. रसप्रिया–विभावनम्।। 02/42।।
07. रसप्रिया–विभावनम्।। 05/14।।
08. निर्याति नैव स्मृतिः।। 92।।
09. निर्याति नैव स्मृतिः।। 97।।
10. निर्याति नैव स्मृतिः।। 34।।
11. निर्याति नैव स्मृतिः।। 71।।
12. निर्याति नैव स्मृतिः।। 81।।

13. निर्याति नैव स्मृतिः।।108।।
14. निर्याति नैव स्मृतिः।। 69।।
15. जीवनपर्वनाटकम् ।। चतुर्थ अंक।।
16. ब्रह्मर्षे! नरबलिप्रथां नाशयितुं सुसम्पन्ना ते योजना।
(जीवनपर्वनाटक के सप्तम अंक में प्रयुक्त भरतवाक्य)
17. सुनन्दया सह शुनःशेपस्य परिणयमिच्छामि।
वैवाहिक कृत्यानन्तरं सर्वे मंगलवचोभिरभिनन्दन्ति।
(जीवनपर्वनाटक के सप्तम अंक में प्रयुक्त गद्यांश)
18. जीवनपर्वनाटकम् ।। द्वितीय अंक।।
19. जीवनपर्वनाटकम् ।। सप्तम अंक।।
20. विपल्लवोऽयं जीवनवृक्षः ।। 115।।
21. विपल्लवोऽयं जीवनवृक्षः ।। 116।।
22. विपल्लवोऽयं जीवनवृक्षः ।। 022।।
23. नाट्यसूत्र ।। 6/31 ।।
24. साहित्यदर्पण।। 1/3 ।।
25. विपल्लवोऽयं जीवनवृक्षः।। 082।।
26. विपल्लवोऽयं जीवनवृक्षः।। 104।।